नियमसार, गाथार्थ है न ? समयसार की गाथा।

[गाथार्थ :] प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि—इन आठ प्रकार का विषकुम्भ है। क्या कहते हैं ? **किये हुए दोषों का निराकरण करना।** दोष हुए हों, उनका निराकरण (करना), वह शुभभाव है और शुभभाव, वह जहर का घड़ा है। कठिन बात है। व्यवहारकारण कहा न यह ? कथनमात्र है, कहनेमात्र है। वस्तु-राग है। व्यवहार प्रतिक्रमण, वह तो राग है। कथनमात्र व्यवहार कहने में आता है। वास्तविक कारण, मोक्ष का वास्तविक कारण तो त्रिकाल कारणपरमात्मा वस्तु जो कारणद्रव्य त्रिकाल, वह कारण और उसमें से होनेवाली निर्मल पर्याय, वह मोक्ष का कारण है और यह व्यवहार तो कथनमात्र, जाननेयोग्य ऐसा भाव आता है; इसलिए यह जाननेमात्र, कहनेमात्र है। **प्रतिक्रमण=किये हुए दोषों का निराकरण करना।** शुभभाव है, वह जहर है, जहर का घड़ा है। अर..र..! पूरी दुनिया पाप में पड़ी है, उसे इस पुण्य को जहर कहना!

मुमुक्षु : ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि.. अनादि से भूला है। भटकते-भटकते अनादि से चौरासी के अवतार में अनन्त-अनन्त भव किये, परन्तु इसने व्यवहार का पक्ष नहीं छोड़ा। व्यवहार है, वह भी कारण है। यहाँ कथनमात्र कारण कहा; वास्तविक कारण नहीं। आहाहा! वास्तविक कारण तो त्रिकाली आत्मा कारणपरमात्मा, वह वास्तविक कारण मोक्ष का और उसके कारण से हुई मोक्ष के मार्ग की दशा, वह मोक्षमार्ग की निर्मल वीतरागी दशा, वह मोक्ष का कारण है। वह वास्तविक कारण है। आहाहा!

द्रव्य कारण। शक्ति में तो ऐसा लिया है न? द्रव्य जो वस्तु है, उसकी शक्ति कारण है। जीवत्वशक्ति, वह जीवद्रव्य का कारण है। यह व्यवहार कहीं जीवद्रव्य का कारण नहीं है। आहाहा! क्या कहा? सैंतालीस शक्ति का जहाँ वर्णन किया, वहाँ जीवत्वशक्ति जीवद्रव्य का कारण है - ऐसा कहा और वे शक्तियाँ तथा द्रव्य, परद्रव्य के लिए कारण नहीं है ऐसा कहा। परद्रव्य के लिए कारण नहीं है। अकारणकार्यशक्ति आयी न? आहाहा! परद्रव्य के लिए कारण नहीं, स्वद्रव्य के लिए कारण शक्तियाँ हैं। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि वह सब कारण है और मोक्ष का कारण, उस कारणपरमात्मा का आश्रय लेकर जो वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वह पर्याय मोक्ष का कारण है। ऐसा लम्बा-लम्बा याद रखे। पाप के धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। शान्तिभाई! पूरे दिन पाप का धन्धा। यह किया... यह किया... यह किया... अब उसमें ऐसी बात, वीतराग की बात कान में सुनना मुश्किल पड़े। वह समझे कब और उसके भव का अन्त कब आवे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रतिक्रमण जो व्यवहार है, उसे हम जहर का घड़ा कहते हैं। जहर है। आहाहा! व्यवहार को कथनमात्र कारण कहते हैं। वास्तविक कारण है नहीं। फिर दूसरा। **प्रतिसरण= सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा।** समकित आदि की प्रेरणा करना, वह भी विकल्प है, वह भी जहर है। विकल्प उठता है, समकित की प्रेरणा की वृत्ति उठे, वह विकल्प है, वह भी जहर है। आहाहा! **परिहार=मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण।** मिथ्याश्रद्धा आदि का त्याग, उसमें भी शुभभाव है। शुभभाव है, वह भी जहर का घड़ा है, विषकुम्भ है। कठिन काम, बापू! दुनिया को मिलना मुश्किल। पूरी

दुनिया व्यवहार में पड़ी है। व्यवहार में पड़ी, गले डूब जहर में डूब गयी है। आहाहा! उसे ऐसी बातें (कहना)। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा का यह फरमान है। गुलाबचन्दभाई!

धारणा=पंच नमस्कारादि... पाँच नमस्कार धारण करना, वह शुभभाव है, जहर है। आहाहा! जगत को कठिन पड़ता है। अभी पाप के कारण निवृत्त नहीं होता, उसमें फिर शुभभाव आवे। एक घड़ी आवे, एक घण्टे पूजा, भक्ति करने आवे, देव-दर्शन करने आवे, उसमें एक शुभभाव आवे, तो यह कहते हैं कि वह जहर है; वह धर्म नहीं। उस शुभभाव से भिन्न अन्दर आत्मा का आनन्द का अनुभव करे, उसका नाम धर्म है। आहाहा! ऐसी बात है। दुनिया को जँचना कठिन पड़े। बाहर की हूफ में, बाहर की प्रवृत्ति की हूफ में, उसमें फिर पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हुए हों, पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हुए हों, करोड़-दो करोड़ हो गये तो आँख फिर जायें। आहाहा! यह कहा न परसों? बीस लाख की एक मोटर। बीस लाख की एक मोटर। इसलिए उसे ऐसा मानो... आहाहा! मानो हम क्या बादशाह!

मुमुक्षु : ऐसी मोटर में बैठकर लड़का विवाह करने जाए तो कितना सुख हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में, अकेला पाप है। यह बीस लाख की मोटर, मुम्बई स्टेशन पर छोड़ने आयी थी। कितने पैसे की है, कहा यह? - कि बीस लाख की। परदेश में से लाये हैं। पचास लाख की एक मोटर है। एक मोटर पचास लाख की। यह धूल इकट्ठी करके मर जानेवाला है बेचारा। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), शुभभाव, वह सब पाप है परन्तु शुभभाव यहाँ करे... आहाहा! है?

पंच नमस्कारादि मन्त्र,... जपे। **प्रतिभा...** को वन्दन करे। **आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना।** सब शुभभाव जहर है। कठिन बात, प्रभु! क्या हो? बेचारे साधारण लोगों को तो सुनने को मिला नहीं। आहाहा! **निवृत्ति=बाह्य विषयकषायादि इच्छा में वर्तते हुए चित्त को मोड़ना।** विषय-कषाय में जाते हुए चित्त को वापस मोड़ना, वह भी एक शुभभाव है, वह भी राग और जहर है। शुभभाव है न? आहाहा! वह धर्म नहीं है। धर्म तो शुभ और अशुभभाव से भिन्न पड़कर चैतन्य का दर्शन करे, चैतन्य की दृष्टि निर्मल ज्ञान करे, उसका नाम धर्म है। जैनधर्म वीतराग परमेश्वर का जिनेश्वर का

कथन यह है। इसे कितने ही बेचारों ने तो सुना भी नहीं होगा। यह किस प्रकार का धर्म होगा? आहाहा!

निन्दा=आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना, वह भी शुभभाव है। वह व्यवहारकारण निमित्त कथनमात्र व्यवहार है, वह धर्म नहीं है। जहर है। आहाहा! सुना जाए नहीं, जगत को कठिन पड़े, क्या हो? संसार में धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन स्त्री, पुत्र और इज्जत-कीर्ति का आग्रह, पैसा खर्च किया हो न और यह किया, लिया और दिया और यह किया... ओहोहो! वहाँ तो मानो हम कहाँ चढ़ गये बड़े। उसमें करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हो तो हो गया। यह कहा न दो लड़के नहीं? अपने पूनमचन्द और न्यालचन्द। आज लड़के का विवाह है न? पाँच करोड़ रुपये। बीस लाख की मोटर लाया है, उसमें बैठकर विवाह करने जाएगा। आज का विवाह है न? दो भाई के पास। एक के पास पाँच करोड़, दूसरे भाई के पास पाँच करोड़। एक को एक लड़की ही है, लड़का नहीं। दर्शन करने आये थे। परन्तु सब हूफ... हूफ... पैसे की ऐसी हूफ मानो... आहाहा! पैसा अर्थात् क्या? धूल। मिट्टी की धूल है। उसकी हूफ में...

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मसाक्षी से; पाप लगे हों, उनकी निन्दा करना, वह भी शुभभाव है और **गुरुसाक्षी से दोषों का प्रगट करना।** शुभभाव है और **दोष हो जाने पर प्रायश्चित्त...** लेना, वह भी शुभभाव है। आहाहा! यह व्यवहार है, वह जहर है। वीतराग परमात्मा, वीतराग देव त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव महाविदेह में सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, वहाँ से यह बात आयी है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा कहते थे, वह बात कुन्दकुन्दाचार्यदेव (ने) आकर यहाँ रखी है। आहाहा! यशपालजी! ऐसी कठिन बात पड़े। क्या हो? बस, उड़ जाए व्यवहार, तब व्यवहार नहीं? खोटा? व्यवहार खोटा क्या, लाख बार खोटा। ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया है। वह व्यवहार अभी कहाँ तेरे पास है? ऐसा व्यवहार तो अनन्त बार किया है कि चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे और नग्न मुनि होकर दिगम्बर अनन्त बार हुआ, परन्तु सम्यग्दर्शन आत्मज्ञान नहीं। यह क्रियाकाण्ड करके उसमें धर्म माना। आहाहा! ये आठ बोल कहे। **आठ प्रकार का विषकुम्भ है।** है न?

अब अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं।

यत्र प्रतिक्रमण-मेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः।।

श्लोकाथ (अरे, भाई!) **जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है,...** जहाँ प्रतिक्रमण के शुभभाव को जहर कहा, **वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँ से होगा?** वहाँ तेरे व्यापार और धन्धे के परिणाम -अकेला पाप हो, वह अमृत कहाँ से होगा? वह तो अकेला महा जहर है। आहाहा! प्रतिक्रमण के परिणाम को जहर कहा तो तेरा व्यापार-धन्धा, स्त्री, पुत्र को प्रसन्न रखना, पाँच-पच्चीस लाख कमाये हो, वहाँ ओहोहो! मानो क्या किया और हम क्या आगे बढ़ गये! उसमें प्रसन्न हो, वह तो अकेला जहर है। जहर का प्याला पीता है। आहाहा! ऐसा काम है।

जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है,... जहाँ, प्रतिक्रमण शुभ व्यवहार जो है, उसे जहर कहा, **वहाँ अप्रतिक्रमण...** संसार के पाप के परिणाम **अमृत कहाँ से होगा?** संसार के कमाने के, विषयभोग के, धन्धे के पैसे प्राप्त करना, ब्याज उगाहना, पूरे दिन धन्धा करना, यह दिया, यह लिया, यह किया, यह किया। मानों पागल, मानो देख लो पागल। शान्तिभाई! उसमें मुम्बई और कलकत्ता। ये दो देखे हैं न? तीनों में देखा है। दिल्ली, मुम्बई और कलकत्ता। आहाहा! मानो पागल देख लो, पागल जैसे। आहाहा!

बहुत वर्ष पहले पालेज में हमारी दुकान थी न, तो माल लेने गये थे। कैसा? 'कोलाबा' कोलाबा। देखने गये थे। इसे भी बहुत वर्ष हुए लगभग ७२ वर्ष हुए। ७२ वर्ष पहले की बात है। एक मारवाड़ी ऐसे... लिया.. दिया.. लिया... दिया...। ऐसे करता था। यह तो ७२ वर्ष पहले की बात है। दुकान का माल लेने गये थे। पालेज में दुकान है न? भरूच और बड़ोदरा के बीच पालेज है। अभी दुकान चलती है, बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। तब माल लेने गये थे। मानो पागल लगे। कहा, यह क्या करता है? मारवाड़ी। लिया.. दिया.. लिया... दिया...। किया करे। वह क्या कहलाता है? (क्या) कहा? कोलाबा। कोलाबा, फोन आवे न? लन्दन से फोन आवे, इसलिए

फिर सिर घुम जाए। आहाहा! यह क्या है? प्रभु! जहाँ जिसे भगवान ने प्रतिक्रमण करने के परिणाम को जहर कहा, वहाँ तेरे ऐसे अप्रतिक्रमण के पाप हैं, वह तो जहर, जहर और जहर है। आहाहा! दुनिया महिमा करे, पागल। पागल की महिमा करे, पागल को कहे कि अहो! इसके पास तो पचास लाख हुए, इसके पास करोड़ हुए, इसके पास दो करोड़ हुए।

यहाँ कहते हैं **अमृत कहाँ से होगा? (अर्थात् नहीं हो सकता।) तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए...** हम तो पुण्य को जहर कहकर ऊँचा चढ़ाते हैं। शुभ को पुण्य कहकर, जहर कहकर ऊँचे अन्तर आत्मा में जा, ऐसा कहते हैं, धर्म वहाँ है। अन्दर आत्मा में जा, वहाँ धर्म है—ऐसा हम कहते हैं, वहाँ तू ऐसे नीचे-नीचे क्यों उतर जाता है? शुभ छोड़कर फिर वहाँ अशुभ में कहाँ चला जाता है? आहाहा! ऐसा कहाँ है?

प्रमादी क्यों होते हैं? अप्रमादी होते हुए ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते? आहाहा! हमने प्रतिक्रमण आदि शुभभाव को जहर कहा, इससे उन्हें छोड़कर तू संसार के अशुभभाव में जाए, वह तो नीचे-नीचे अधो में उतरा। शुभभाव को छोड़कर अन्दर शुद्ध आत्मा में जा, तो वहाँ शान्ति है। ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु अन्दर वीतरागदेव ने देखा, जिनेश्वरदेव, जिन्होंने आत्मा देखा, वह अन्तर अमृत का सागर है। अमृत का समुद्र भगवान है। उसके सन्मुख तुझे देखना आया नहीं। उसके सन्मुख देखना आया नहीं, परन्तु तूने सुना नहीं। सुना, इतना सब बाहर का जहर का सुना है। आहाहा!

कहते हैं कि हम ऐसी ऊँची बात कहते हैं। प्रतिक्रमण आदि को जहर कहा, इसलिए उन्हें छोड़कर अशुभ में कहाँ जाता है? उन्हें छोड़कर अन्दर में जा न! शुद्ध आत्मा में जा न! आहाहा! चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है। परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। परमात्मस्वरूप न हो तो परमात्मा होगा कहाँ से? अरिहन्त हुए, वे कहाँ से हुए? वे कहीं बाहर से आते हैं? वह अन्दर में स्वरूप भरा है, उसमें से आते हैं। इसलिए कहते हैं कि जहाँ है, वहाँ जा न! हमने राग को जहर कहा, इसलिए नीचे उतरकर अशुभराग में जाता है, यह कहीं ठीक कहलायेगा? आहाहा! कठिन बात है।

श्लोक-१२३

और (इसी ९२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(मंदाक्रांता)

आत्मध्याना-दपर-मखिलं घोरसन्सारमूलं,
ध्यानध्येयप्रमुखसुतपः कल्पनामात्ररम्यम् ।
बुद्ध्वा धीमान् सहज-परमानन्द-पीयूषपूरे,
निर्मज्जन्तं सहज-परमात्मान-मेकं प्रपेदे ।।१२३।।

(हरिगीतिका)

निज आत्मा के ध्यान बिन सब घोर भव कारण अहो।
ये ध्यान-ध्येयादिक सुतप भी कल्पना में रम्य है॥
यह जानकर धीमान जन इस एक ही परमात्म का।
पीयूष परमानन्द में ही डूबकर आश्रय करें॥१२३॥

[श्लोकार्थ :] आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल है, (और) ध्यान-ध्येयादिक सुतप (अर्थात् ध्यान, ध्येय आदि के विकल्पवाला शुभ तप भी) कल्पनामात्र रम्य है;—ऐसा जानकर धीमान (बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का आश्रय करते हैं॥१२३॥

श्लोक-१२३ पर प्रवचन

और (इसी ९२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

वह समयसार का श्लोक था।

आत्मध्याना-दपर-मखिलं घोरसन्सारमूलं,
ध्यानध्येयप्रमुखसुतपः कल्पनामात्ररम्यम् ।

बुद्ध्वा धीमान् सहज-परमानन्द-पीयूषपूरे,
निर्मज्जन्तं सहज-परमात्मान-मेकं प्रपेदे ।।१२३।।

आहाहा! यह तो शान्ति से सुने तब हो। वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने तो बाहर से जरा एक घण्टे पूजा की, भक्ति की, दान किया, कहीं पाँच-पच्चीस हजार दान दिया (और मान लिया कि) हो गया धर्म। मान करके बैठे। अरे! तेरे करोड़ दे न! वहाँ कहाँ धर्म था? वह शुभभाव होवे तो पुण्य होगा। यह पुण्य है, वह जहर है। आहाहा! भभूतमल ने आठ लाख खर्च किये। बैंगलोर। आठ लाख का मन्दिर बनाया। वह श्वेताम्बर है, बनाया दिगम्बर मन्दिर। चार लाख स्थानकवासी मारवाड़ी ने दिये। जुगराजजी। है न? महावीर मार्केट, महावीर मार्केट है न? अभी गुजर गये हैं। लड़का आया था। यहाँ सब आते थे। वे स्थानकवासी थे, उनके पास एक करोड़ रुपये हैं, इनके पास दो करोड़ रुपये हैं। दो करोड़वाले ने आठ लाख दिये, एक करोड़वाले ने चार लाख दिये और बारह लाख का मन्दिर बनाया। अभी हम गये थे, तब तीन लाख बढ़ाये। पन्द्रह लाख का बनाया। बैंगलोर। आहाहा! परन्तु भाई! यह सब तेरे पन्द्रह लाख, कहे कि चाहे जो कहे, वह धर्म नहीं है, शुभभाव है, पुण्य है। स्पष्ट बात है। एक रकम से आठ लाख दिये। दो करोड़ की पूँजी है। स्टील का धन्धा है।

मुमुक्षु : कमाये कितने?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह फिर कमाये चालीस लाख। हमारे में (कार्यक्रम में) रुक गये न। हम वहाँ थे, तब मन्दिर की बड़ी धूमधाम की, उसमें रुके, तब दो करोड़ का स्टील पड़ा हुआ था, उसमें आठ लाख खर्च किये, चालीस लाख आये। स्टील में भाव बढ़ गये, तो चालीस लाख आये। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण आते हैं। उसका कुछ नहीं।

मुमुक्षु : आपके चरण हों, वहाँ रुपये.... रुपये हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें। पूर्व के पुण्य के बिना कुछ नहीं आता। पुण्य से आता है परन्तु आता है, वह पाप है। परिग्रह, वह पाप है। करोड़ और दो करोड़ रुपये हैं, वे स्वयं पाप हैं। क्योंकि भगवान ने परिग्रह को पाप कहा है। अभ्यन्तर परिग्रह और बाह्य परिग्रह को पाप कहा है। आवे पुण्य से, परन्तु परिग्रह स्वयं पाप है और उसका करनेवाला पापी है। उसे लोग पुण्यशाली कहते हैं। दुनिया पागल है। आहाहा! वह तो आया नहीं?

अभी भभूतमल आया था न? यहाँ सवा लाख दिये न। यहाँ मकान बनाया है, उसमें सवा लाख दिये। अभी सवा लाख दूसरे दिये। ऐसे पैसे देता है। उदार व्यक्ति है परन्तु शुभभाव है, कहा, भाई! उसमें से कुछ धर्म हो जाए और कल्याण हो जाए और जन्म-मरण मिट जाए... तेरे आठ लाख और दस लाख धूल में, इस बात में कोई दम नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा देना या नहीं देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दे कौन सकता है? इसे भाव होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! पैसा तो जड़ है, अजीव-मिट्टी-धूल है। वह तो पुद्गल है। वह पुद्गल जाना-आना, वह तो उसके कारण से आता-जाता है। आत्मा ऐसा मानता है कि मैं देता हूँ, वह तो जड़ का स्वामी होता है। राग की मन्दता का भाव करे, पैसा जाना हो तो जाए। आहाहा! बात-बात में अन्तर पड़ता है। दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! प्रयोग करने में भी पैसा मेरा है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है, क्योंकि वह तो जड़ है, पैसा मिट्टी-धूल है। आहाहा! आत्मा चैतन्य अरूपी अन्दर भिन्न है। यह तो शरीर मिट्टी-धूल है। यह कहाँ था। यह तो मिट्टी है। यह मेरा है, ऐसा माने वह मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन काम है।

यहाँ कहते हैं **आत्मध्यान के अतिरिक्त...** है..? आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप है। आहाहा! जैसे नारियल में गोला भिन्न है; वैसे इस शरीर में और राग से आत्मा अन्दर अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा का ध्यान, इसके अतिरिक्त **अन्य सब घोर संसार का मूल है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : आचार्य बहुत कठोर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है वह है। आचार्य को जगत की कहाँ पड़ी है। जगत माने, न माने, वह उसके घर में रहा। अनादिकाल से जगत स्वच्छन्दता से चलता है। इसने-जगत ने सत्य माना कब है? एक तो संसार से निवृत्त नहीं होता। पूरे दिन धन्धा पाप, निवृत्त होवे तो छह-सात घण्टे नींद में और छह-सात घण्टे स्त्री-पुत्र को प्रसन्न करना, एक घण्टे कदाचित् सुनने को मिले तो ऐसा सुने—पूजा करो, भक्ति करो तो धर्म होगा। यह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! यहाँ कहते हैं **आत्मध्यान के अतिरिक्त...** है? आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु है, उसका ध्येय बनाकर ध्यान (होता है)...

आहाहा! उसके **अतिरिक्त अन्य सब...** यह शुभ और अशुभभाव दोनों **घोर संसार का मूल है,...** आहाहा! इसमें है या नहीं?

मुमुक्षु : मुनिराज तो ऐसा ही कहे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जैसा हो, वैसा कहे न? केवली परमात्मा ने कहा, वह मुनि कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजमान हैं। उनके मुख में से निकला है, उसे यह कहते हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य...** अर र र! कठिन बात। आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप, वह राग के दया, दान के विकल्प से, राग से भी अन्दर भिन्न है, ऐसे आत्मा का ध्यान, उस आत्मा का ज्ञान, उसके अतिरिक्त जितना शुभ और अशुभभाव करे, वह **घोर संसार का मूल है,...** आहाहा! शुभ-अशुभ दोनों को घोर संसार का मूल कहा। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो या अशुभ हो, दोनों घोर संसार है। आहाहा! है? आज कठोर बात आयी। बात तो यह है 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' दुनिया को मिले, न मिले, इससे कहीं दूसरा बदल जाए ऐसा है? आहाहा!

आत्मध्यान के अतिरिक्त... आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप अन्दर ज्ञानस्वरूप आत्मा, आनन्दस्वरूप आत्मा है। उसका ध्यान, उसे ध्येय बनाकर ध्यान। इसके **अतिरिक्त...** जितने शुभ-अशुभभाव **सब घोर संसार का मूल है,...** चार गति भटकने की मिले, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। है? इसमें है या नहीं? **आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य...** एक ओर आत्मध्यान तथा एक ओर दूसरा सब। आहाहा! शास्त्र श्रवण, शास्त्र कथन, वाँचन, यह सब शुभभाव है। यह शुभभाव और संसार का पापभाव, दुकान और घर का भाव अकेला पाप। ये दोनों **घोर संसार का मूल है,...** आहाहा!

कहाँ जाएगा यह? चौरासी लाख योनि में कहाँ अवतरित होगा? आहाहा! आत्मा तो अनादि-अनन्त है, नित्य है। शरीर छूट जाएगा। शरीर वह तो थोड़े काल रहनेवाला है। पचास-साठ निकल गये, उसे कुछ ५०-६० (वर्ष) रहनेवाला नहीं है। थोड़ा समय है, यह छूटकर जाएगा कहीं। धर्म है नहीं, पुण्य की खबर नहीं। पुण्य किसे कहना और कैसे हो, इसका समय निकालता नहीं। एक घण्टे का समय निकाले तो भक्ति करे, एक घण्टे

पूजा करे तो हो गया, जाओ धर्म हो गया। यह किसी ने पूछा था। इन भाई को... लोग... न्यालचन्द के पास चार करोड़ रुपये हैं। लड़का नहीं है। चार करोड़-पाँच करोड़ रुपये हैं। किसी ने कहा। ऐसा सुना। कोई कहता था। किसी ने कहा कि कुछ करो। करते हैं न। भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। सामने मूर्ति-फोटो रखकर एक घण्टे भक्ति और पूजा करे, यह किया वह हमने किया। आहाहा! वहाँ कहा था, किसी ने पूछा था। किसी ने पूछा और फिर कहा कि हम धर्म करते हैं। भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। यह धर्म, लो। सवेरे फोटो रखे, प्रतिमा तो कहाँ थी वहाँ उसे। फोटो रखे और पूजा करे, भक्ति करे, एक घण्टे गाये। रिकार्डिंग अब उतारे। रिकार्डिंग ले जाएँगे परन्तु उसमें वस्तु क्या है, इसकी समझ करना, इसका निर्णय करना, उसके लिए समय निकालना। पूरे दिन पाप के लिए समय निकालता है। आहाहा! गजब कठिन काम। वापस कोई लड़का नहीं। एक ही लड़की विवाह कर दिया। चार करोड़-पाँच करोड़ रुपये होंगे। बड़े बाग-बगीचे... बाग... बाग। वहाँ अभी मुम्बई आये थे। आहाहा! किसी ने पूछा तो ऐसा जवाब दिया। भगवान का फोटो रखते हैं न। फोटो रखते हैं, उसकी पूजा करते हैं और गाते हैं। गायन-वायन गाते हैं, एक घण्टा व्यतीत करते हैं। लो, हो गया धर्म। कहाँ बापू! वह तो शुभभाव है, जहर है, घोर संसार का मूल है।

ध्यान-ध्येयादिक सुतप (अर्थात् ध्यान, ध्येय आदि के विकल्पवाला शुभ तप)... शुभ तप। यह ध्यान करता हूँ, ध्येय और यह करता हूँ, ऐसा जो विकल्प है वह शुभतप **कल्पनामात्र रम्य है...** अर र र! अन्दर ध्यान में भी कल्पनामात्र कल्पनाएँ करे कि यह आत्मा यह है, ऐसा है। आत्मा ध्यान करनेयोग्य है और मैं ध्यान करता हूँ। यह कल्पनामात्र, यह शुभ तप कहलाता है। शुभ तप ध्यान में (होता है) वह भी **कल्पनामात्र रम्य है...** आहाहा! कहाँ जाना इसमें? बाबा हो जाए तो हो। बाबा ही है। कौन, कब वस्तु तेरी है कहाँ? शरीर तेरा नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। यह तो श्मशान की राख होगी। यह तो श्मशान की राख है। तेरा तत्त्व अन्दर आत्मा अत्यन्त भिन्न चीज़ है। उसे लेना और देना, आत्मा तो शरीर को स्पर्श भी नहीं करता। शरीर आत्मा को अन्दर स्पर्श नहीं करता। अरे रे! किसे खबर पड़े? इसमें ऐसे ध्यान आदि के विकल्प कहते हैं। ध्यान के विकल्प भी वह सुतप भी एक... आहाहा! **कल्पनामात्र रम्य है...** कल्पनामात्र अच्छा कहलाये कि

ध्यान में कल्पना की या ऐसा किया, ऐसा ध्यान किया, ऐसा ध्यान और ऐसा आत्मा। ऐसी कल्पनायें की थी। आहाहा! गजब बात है।

क्रियाकाण्ड को तो निकाल दिया परन्तु अब ध्यान में कल्पना में कल्पना लगायी कि ऐसा ध्यान... ऐसा ध्यान... ऐसा ध्यान... यह ध्यान... ऐसी कल्पना में रुका, वह कल्पनामात्र तप है। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिए यह बनाया है। कुन्दकुन्द आचार्य दिगम्बर मुनि कहते हैं कि मेरे लिए यह बनाया है। तुम्हें समझना हो तो समझो, कहते हैं। आहाहा! उन्हें समाज की पड़ी नहीं कि समाज मानेगा या नहीं? समाज उसके घर में रहा। वस्तु यह है। मानना होवे वह माने। आहाहा!

ध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल है,... यह एक ओर रखा। अब इस ध्यान में आया। ध्यान और ध्येय और ऐसा सुतप। ध्यान यह और ध्येय यह, ऐसा जो विकल्प। ध्यान की पर्याय और ध्येय, वह द्रव्य का, ऐसा जो विकल्प वह सुतप। आहाहा! वह **(विकल्पवाला शुभ तप भी) कल्पनामात्र रम्य है;...** आहाहा! गजब बात है न? उन्हें दुनिया की कहाँ पड़ी है। आहाहा! आत्मा में ध्यान के अतिरिक्त... अभी आत्मा कौन, इसकी भी खबर नहीं होती। अन्दर आत्मा क्या चीज़ है? आत्मा तो पुण्य, पाप, दया, दान के रागरहित भिन्न अन्दर तत्त्व है। वह तो शरीर से अत्यन्त भिन्न तत्त्व है। अब उसका ध्यानादि कहते हैं, उसके अतिरिक्त सब घोर संसार है और ध्यान में भी ध्यान की कल्पना में रुका कि यह ध्येय है और यह ध्यान है और ध्यान करनेयोग्य है। ध्यान में न जाकर ध्यान की कल्पना में रुका... आहाहा! वह **कल्पनामात्र रम्य है;...** कल्पनामात्र ठीक कहने में आता है। आहाहा! ठेठ ले गये। आहाहा! कठिन काम है, बापू!

वीतराग जिनेश्वरदेव का मार्ग, प्रभु! बहुत सूक्ष्म है। अभी तो सब गड़बड़ चली है। बाहर से सब मनवाकर जिन्दगी चली जाती है। प्ररूपणा भी ऐसी ही करते हैं। यह करो, यह करो, व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो, जाओ (हो गया) धर्म। आहाहा! यहाँ तो ध्यान और ध्येय में भी रुका कल्पना में (तो) अन्दर ध्यान जमा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप है, उसमें एकाग्र नहीं हो सका और उसकी कल्पना में रुका। आहाहा! वह सुतप भी कल्पना रम्य है। कल्पनामात्र अच्छा कहने में आता है। हैं?

ऐसा जानकर... ऐसा जानकर... आहाहा! **धीमान (बुद्धिमान पुरुष)...** बुद्धिमान उसे कहते हैं... आहाहा! जो आत्मा में अन्दर झुके, उसे बुद्धिमान कहते हैं। आहाहा! बाकी सब कुबुद्धि है। संसार की चतुराई और व्यापार की कुशलता और वकालात का धन्धा, डॉक्टर का बड़ा-बड़ा धन्धा। महीने में पाँच-पाँच, दस-दस हजार कमावे। बेचारे दुःखी हैं। आहाहा! **ऐसा जानकर धीमान (बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए...** आहाहा! स्वाभाविक परमानन्दरूपी पीयूष का अमृत। स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृत आत्मा। अन्दर सहज परमानन्दरूपी अमृत भरा है। आत्मा में अतीन्द्रिय अमृत भरा है। आहाहा! वह अनन्त शक्तियों का सागर है, ऐसा जो भगवान आत्मा, वह **सहज परमानन्दरूपी पीयूष...** अर्थात् अमृत। उसके **पूर में डूबते हुए...** अन्दर एकाग्र हुआ। आहाहा! आनन्द की धारा बहती है। आत्मा आनन्दस्वरूप है - अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में डूबते हुए, अन्दर जाते हुए... आहाहा! **(-निमग्न होते हुए)...** डूबते का अर्थ किया।

सहज परमानन्दरूपी पीयूष... अमृत के **पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का एक का आश्रय करते हैं।** ऐसे सहज परमात्मा का **एक का...** भाषा देखो! ध्यान और ध्येय की कल्पना भी नहीं। शुभभाव तो नहीं... आहाहा! अशुभभाव तो नहीं परन्तु ध्यान और ध्येय की कल्पना भी नहीं। आहाहा! सहज परमात्मा का **एक का...** एक का **आश्रय करते हैं।** वस्तु सहजात्मस्वरूप परमात्मा, निजानन्द प्रभु का-एक का आश्रय करे, उसे धर्म होता है। आहाहा! एक का आश्रय करते हैं। भेद का भी नहीं। गुण-गुणी भेद का नहीं। शुभराग, अशुभराग की तो बात ही क्या करना? आहाहा! ध्यान-ध्येय की कल्पना भी नहीं। एक अमृत से भरपूर भगवान आत्मा अन्दर, उसमें डुबकी मारे अर्थात् एकाग्र होते हैं। आहाहा! वह एक ही आश्रय करने के योग्य है। बात तो बहुत अच्छी आयी है। टोच है, टोच। आहाहा!

एक परमात्मा स्वयं। परमात्मा दूसरे नहीं। ऐसा कहा न? अपने को जानकर। **धीमान (बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा एक का...** स्वयं एक आत्मा, हों! परमात्मा अर्थात् भगवान वीतराग सर्वज्ञ नहीं। वीतराग सर्वज्ञ पर लक्ष्य जाने से राग होगा। आहाहा! एक

सहजात्म परमानन्दस्वरूप आत्मा, उसमें एक का आश्रय, एक का आश्रय। गुण-गुणीभेद भी नहीं। ओहोहो! कहाँ से कहाँ निकाल डाला। शुभाशुभभाव घोर संसार, ध्यान-ध्येय की कल्पनामात्र रम्य, सुतप रम्य... आहाहा! उसे छोड़कर अकेला अन्दर **सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का एक का आश्रय करते हैं।** उन्हें धर्म होकर मुक्ति का कारण होता है। उन्हें धर्म होता है। आहाहा! ऐसा कठिन है। कहाँ तक निकाल डाला। शुभभाव तो निकाल डाला। जहर। ध्यान, ध्येय और ध्याता की कल्पना रम्य, वह नहीं, उसे छोड़ दे। आहाहा!

अकेला सहज परमात्मा अमृत से भरपूर **एक का आश्रय करे।** गुण-गुणी भेद का भी नहीं, पर्याय का भी नहीं। एक गुणी का आश्रय करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म है। ऐसा धर्म वीतराग का है। आहाहा! है या नहीं? यह यहाँ का सूत्र है? यह कुछ सोनगढ़ का नहीं है। भगवान का कहा हुआ, मुनिराज ने बनाया हुआ है। आहाहा!

एक स्वद्रव्य, जिसमें अकेला अमृत और आनन्द भरा है। एक आया था। जिसका आनन्द एक लक्षण है, ऐसा आया था। आनन्द एक लक्षण है। अतीन्द्रिय आनन्द एक जिसका लक्षण है। ऐसे आत्मा को अनुभव करे, उसका नाम धर्म है। वीतरागमार्ग में उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! बात बहुत आगे गयी। यहाँ तो अभी यह व्यवहार करो तो होगा और यह व्यवहार करो तो होगा और यह करो तो होगा। व्यवहार करना चाहिए, करना चाहिए। भक्ति करने से होगा, परमात्मा की पूजा करने से होगा। आहाहा! साधु को आहार-पानी देने से होगा। इन सब शुभभावों को तो यहाँ घोर संसार का मूल कहा है। ध्यान में अन्दर आया तो कल्पना में खड़ा रहा तो भी कहते हैं कि यह नहीं। आहाहा! अकेला परमानन्दस्वरूप आत्मा है, एक का आश्रय करे, उसे धर्म होता है। यह ९२ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-९३

झाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं।।९३।।

ध्याननिलीनः साधुः परित्यागं करोति सर्वदोषाणाम्।
तस्मात्तु ध्यान-मेव हि सर्वातिचारस्य प्रतिक्रमणम्।।९३।।

अत्र ध्यानमेकमुपादेयमित्युक्तम्। कश्चित् परमजिनयोगीश्वरः साधुः अत्यासन्न-भव्यजीवः अध्यात्मभाषयोक्तस्वात्माश्रितनिश्चयधर्मध्याननिलीनः निर्भेदरूपेण स्थितः, अथवा सकलक्रियाकाण्डाडम्बरव्यवहारनयात्मकभेदकरणध्यानध्येयविकल्पनिर्मुक्त-निखिलकरणग्रामा-गोचरपरमतत्त्वशुद्धान्तस्तत्त्वविषयभेदकल्पना निरपेक्षनिश्चयशुक्ल-ध्यानस्वरूपे तिष्ठति च, स च निरवशेषेणान्तर्मुखतया प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तमोहरागद्वेषाणां परित्यागं करोति, तस्मात् स्वात्माश्रितनिश्चयधर्मशुक्लध्यानद्वितयमेव सर्वातिचाराणां प्रतिक्रमणमिति।

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।
अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है॥९३॥

अन्वयार्थ :—[ध्याननिलीनः] ध्यान में लीन [साधुः] साधु [सर्वदोषाणाम्] सर्व दोषों का [परित्यागं] परित्याग [करोति] करते हैं; [तस्मात् तु] इसलिए [ध्यानम् एव] ध्यान ही [हि] वास्तव में [सर्वातिचारस्य] सर्व अतिचार का [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण है।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है ऐसा कहा है।

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु—अति-आसन्नभव्य जीव, अध्यात्म भाषा में पूर्वोक्त स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित और व्यवहारनयात्मक [१]भेदकरण तथा

---

१. भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना वह। [समस्त भेदकरण—ध्यान-ध्येय के विकल्प भी व्यवहारनयस्वरूप है।]

ध्यानध्येय के विकल्प रहित, समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर ऐसा जो परम तत्त्व—शुद्ध अन्तःतत्त्व, तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से [१]निरपेक्ष निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप से स्थित रहता है, वह (साधु) निरवशेषरूप से अन्तर्मुख होने से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है; इसलिए (ऐसा सिद्ध हुआ कि) स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है।

गाथा-९३ पर प्रवचन

९३ गाथा।

झाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं।।९३।।

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।
अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है॥९३॥

यह ध्यान समस्त पाप को मिटाने का कारण है। पुण्य और पाप दोनों। आहाहा! ध्यान में भी वापस किसका ध्यान? आत्मा का। वापस वह आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है, ऐसी कल्पना करके वहाँ खड़ा रखे, वह ध्यान नहीं। आहाहा! अभी यह चला है। आत्मा के ध्यान की बातें (चली है) परन्तु वह ध्यान नहीं है। आहाहा!

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।
अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है॥९३॥

ओहोहो! मुनिराज कहते हैं, मैंने तो मेरे लिए यह बनाया है। मेरी भावना के लिए (बनाया है)। आहाहा! दुनिया सुने, समझे और ले तो ले। बाकी मैंने तो मेरी भावना के लिए बनाया है। सत्य तो ऐसा है। सत्य जैसा वीतरागमार्ग में कहा, ऐसा सत्य यह है। इसके अतिरिक्त वीतरागमार्ग के नाम से, पुण्य के नाम से धर्म और व्रत करो, तप करो, अपवास

१. निरपेक्ष=उदासीन; निस्पृह; अपेक्षारहित। [निश्चयशुक्लध्यान शुद्ध अन्तःतत्त्व सम्बन्धी भेदों की कल्पना से भी निरपेक्ष है।]

करो, भक्ति करो, पूजा करो, यह धर्म मनवावे, वह जैनमार्ग नहीं है, वह जैनधर्म नहीं है। यह मोक्षपाहुड़ की ८३ गाथा में आ गया न? पूजा आदि जैनधर्म नहीं। पूजा, व्रत, वैयावृत्य आदि सब शुभभाव है। वह कोई जैनधर्म नहीं है। अष्टपाहुड़ में आ गया है।

ध्यान अकेला, आत्मा उससे रहित... उसका नाम यहाँ धर्मध्यान कहने में आता है। वह इस गाथा में विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)